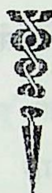


कैक्टस और गुलाब

पृतपाल सिंह 'बेताब'

कैक्टस और गुलाब



(ग़ज़लें)

घर में सजाए रखते हैं गमलों में कैक्टस
बाहर तलाश करते हैं ताज़ा गुलाब हम।
(पृतपाल सिंह बेताब)

रूचिका प्रकाशन :
नशेमन 188 - सैक्टर - I, छन्नी हिम्मत, हाऊसिंग कालोनी,
जम्मू-तवी - 180 015

"कैक्टस और गुलाब" ग़ज़लें

पृतपाल सिंह "बेताब" (जन्म 26 जुलाई 1949)

प्रकाशक : रूचिका प्रकाशन, छन्नी हिम्मत, हाऊसिंग कालोनी, जम्मू - तवी

मुद्रक : आशा शर्मा, निर्मल प्रिंटर्स, जम्मू। ☎ 541733

प्रकाशन : 26 - 7 - 1999

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

लिपियँतरण : पृतपाल सिंह "बेताब"

शब्द-कोष : पृतपाल सिंह "बेताब"

सरवरक़ : जगदीश सेठी

मूल्य : 200/- रु०

Cactus - Aur - Gulab

(A Collection of Urdu Ghazals of Pritpal Singh "Betab" in Dev-Nagri Script.)

Publishers : Ruchika Prakashan

"Nasheman" - 188 - *Sector - I, Chhanni Himmat, Housing Colony, Jammu Tawi* - 180 015

यह ग़ज़ल - सँग्रह उर्दू शायरी के उन तमाम
चाहने वालों को सादर समर्पित है
जो उर्दू - फ़ारसी लिपि
से वाक़िफ़
नहीं हैं।

"गर क़बूल उफ़तद ज़हे इज़्ज़ो शरफ़"

पृतपाल सिंह 'बेताब"

'कैक्टस और गुलाब' ग़ज़लें
कृपाल सिंह "बेताब" (जन्म 28 जुलाई 1949)

प्रकाशक : [illegible] प्रकाशन, [illegible]
जम्मू - [illegible]

मुद्रक : [illegible] जम्मू। [illegible]

(C) [illegible]

प्रथम संस्करण : 1000 [illegible]

[illegible] : कृपाल सिंह [illegible]

शब्द-संयोजन : कृपाल सिंह "बेताब"

[illegible] : [illegible]

मूल्य : 200/- रु.

Cactus - Aur - Gulab
(A Collection of Urdu Ghazals by Kripal Singh "Betab"
in Devanagari Script.)
Publishers : Rachna Prakashan
[illegible] - Sector - 1, Chhanni Himmat,
[illegible] Tawi - 180 015

भूमिका

पृतपाल सिंह 'बेताब' ने ग़ज़ल की ज़मीन में ग़ैर-मतवक़्क़ा[1] फूल खिलाए हैं। सब से पहली बात तो यह कि वो ज़ुबान में किसी रसूमियात[2] के पाबन्द नहीं हैं। वो नामानूस[3] अलफ़ाज़ भी बेतकल्लुफ़ी से बरत लेते हैं और ग़ज़ल की मानूस रिवायती रख रखाव वाली लफ़ज़ियात भी उन की दसतरस में है। लफ़ज़ियात का यह तनव्वा[4] किसी तेज़ी-ए-तबअ[5] के इज़हार या ज़हानत के बजाए चालाकी से काम निकालने की ख़ातिर नहीं है। इस तनव्वा के ज़रिये तख़लीकी फ़वायद[6] हासिल होते हैं। कभी तो लगता है कि शायर (प्रथम पुरुष) थक हार कर ऐसे उसलूब[7] में अपनी बात कह रहा है जो खुद ही तजरुबे मुशाहिदे इन्सानी अमल की नाक़दरी ज़ाहिर कर दे। महसूस होता है वह जान बूझ कर बुलन्द आहँगी तर्क कर के आम ज़ुबान इस्तेमाल कर रहा है :-

कितने युगों की बर्फ़ है इस कौहसार पर
बातिन में इस के अब्र कोई लावा नहीं रहा।

दुनिया-ए-रंग-ओ-बू से किनारा नहीं किया।
अच्छा किया जो हम ने दिखावा नहीं किया।

खोदी थीं हम ने अपनी रिवायात के लिए
यह क्या हुआ कि हम इन्हीं क़बरों में गड़ गए।

कोई चौदह बरस की बात नहीं
मेरा बनबास एक जीवन है।

आदमी रास्ते बदलता है।
फ़लसफ़ा साथ - साथ चलता है।

इन शेरों में सादगी बड़ी गहरी फ़िक्र का परदा है। यह भी ग़ौर कीजिए कि इन सब अशआर में किसी क़िस्म की नाकामी का ज़िक्र है।

यह नाकामी बेताब की शायरी में ज़ाती नाकामी, फ़लसफ़ा, सियासत की नाकामी, तहज़ीब-ओ-सक़ाफ़त की नाकामी की शक्ल में जगह जगह नज़र आती है। इस में तलखी का ज़ायक़ा कम है तन्ज़ की गहराई ज़ियादा है। इन ग़ज़लों में तफ़क्कुर[8] के साथ साथ महज़ूनी[9] का रंग भी है :-

वो क़त्ल करता है एक-एक दिन में सौ-सौ बार
कभी-कभी तो मुझे ख़ूँबहा[10] भी देता है।

शिकवा करूँ तो किस से करूँ अपने हाल का
मेरा सफ़र है पाँव मिरा आबला मिरा।

एक बूँद पानी की रेत में नहीं ठहरी
मैं भी किन ज़मीनों पर अबर बन के बरसा हूँ।

उस ने बदल के रख दिया नक़्शा मिरा तमाम
सब हो चुका तो पूछ रहा है रज़ा मिरी।

मछली ने हम को सारे ख़ज़ाने दिखा दिए
आता न था उभरना मगर डूब कर हमें।

वक़्त और मुक़ाम से न कभी हम गुज़र सके
गुज़रे मुक़ाम-ओ-वक़्त फ़क़त रसम-ओ राह में।

दीवार-ओ-दर खड़े रहे बाहर उसी तरह
और ज़लज़ला मकान के अन्दर उतर गया।

ये और इन की तरह के कितने ही अशआर हैं जिन में इज़हार की पुख़्तगी, आहँग की सलावत[11] ख़ुद-तर्जमी से इन्कार और मुश्किल मज़मून को पूरा-पूरा ब्यान कर देने का ढंग ऐसे कलासीक़ी मिज़ाज का पता देता है जिस ने हाल को पूरी तरह बरता है और माज़ी को पूरी तरह हज़म किया है। इन ग़ज़लों का शायर इतना ज़र्फ़ रखता है कि हर मुख़ालिफ़ सानिहे[12] हर अधूरी बात हर नाकाम कोशिश को बरदाश्त कर जाए और फिर उसे शेर का रूप दे।

पृतपाल सिंह 'बेताब' के यहाँ महज़ूनी[13] और कभी कभी मायूसी तो है लेकिन शिकस्त नहीं। एक बात यह भी है जहाँ उन के कलाम में मुख़तलिफ़ तरह की कोशिशों की नारसाई का अहसास होता है, वहाँ इन्सानी तअल्लुक़ात की नाकामी या शिकस्त का अहसास बिल्कुल नहीं होता। ऐसा लगता है कि नाकामियों के इस वसी (अ) खन्डर में भी रूह और दिल के बनाए हुए रिश्ते उस्तवार हैं :-

दाग़-ए-दिल-ए ख़राब शबों को जले है "मीर"
इश्क़ इस ख़राबे में भी चराग़ इक जला गया।
(मीर तक़ी मीर)

पृतपाल सिंह 'बेताब' शिद्दत-ए-अहसास के शायर हैं। लेकिन जो चीज़ उन्हें साहिब-ए-तमकीन[14] रखती है वो ग़ालिबन यही रूहानी और इन्सानी रिश्तों के दवाम[15] और इन के मुवस्सिर[16] होने का तजरुबा है जो उन की ग़ज़ल में तहधारा की तरह चुपचाप इस की गहराईयों को सैराब करती है :-

उस की ख़ामौश झील में "बेताब"
एक पत्थर मिरी सदा का है।

तेज़ लहरें किनारे तोड़ती हैं
और पुल इक ख़मौश बन्धन है।

आती जाती हैं किश्तियाँ "बेताब"
कभी दरिया को पार कर देखो।

सुस्त है दरिया बज़ाहिर इस में उतरोगे तो फिर
तेज़ लहरें देखना इस की रवानी देखना।

पृतपाल सिंह 'बेताब' की दुनियाँ में बहुत शिकस्त-ओ-रीख़्त[17] हुई है। यानी जिस दुनिया का ज़िक्र उन की ग़ज़ल में है वो इसतिक़लाल[18]

पज़ीर नहीं है। लेकिन इस अदम[19] इसतिक़लाल[20] का नतीजा अभी वाज़ह नहीं हुआ है। इस वक़्त तो इस ग़ज़ल में दुनियाँ दिगर-गूँ[21] है और धोखे-बाज़ (deceptive) है। लेकिन ख़ुद वो शख़्स (प्रथम पुरुष/शायर) जो इस दुनिया का तजरुबा कर रहा है उस का आलम (दिगर-गूँ नहीं, ये बहुत बड़ी बात है)

इलाह्-आबाद

शमस-उर-रहमान फ़ारूक़ी
(सरस्वती सम्मान)

(1) ग़ैर-मुतवक़्क़ा— जिस की उमीद न हो, उमीद से बहुत ज़ियादा (2) रसूमियात—ज़ाबिता, प्रम्परा (3) नामानूस—अजनबी, बेगाना (4) तनव्वा—भांति-भांति प्रकार का होना, (5) तबअ—तबीअत, मिज़ाज (6) फ़वायद—फ़ायदे (7) उसलूब—तरीक़ा, तर्ज़, रविश, शैली (8) तफ़क्कुर — चिंतन (9) महज़ूनी — ग़म, रंज (10) ख़ूँबहा--ख़ून की क़ीमत, मरने वाले की जान का मुआविज़ा जो उस के वारिसों को दिया जाता है (11) सलावत—मज़बूती (12) सानिहा — दुरघटना (13) महज़ूनी — ग़म, रंज (14) तमकीन—ताक़त, ज़ोर (15) दवाम—हमेशा क़ायम रहना (16) मुवस्सिर—असर करने वाला, कारगर (17) रीख़्त—टूट फूट, बिखराव (18, 20) इसतिक़लाल—दृढ़ता, धीरज (19) अदम—ना होना (21) दिगरगूँ—उलट पलट, बदला हुआ।

मुक़द्दमा

आज से कुछ समय पहले जब उर्दू शायरी में आधुनिकता का रूझान आम हुआ तो तकनीकी और तथा-कथित आधुनिक कवियों का एक हुजूम मंजर-ए-आम पर आ गया। वक़्त गुजरता गया और इस हुजूम में इज़ाफ़ा होता गया लेकिन इस हुजूम के साथ ही साथ कुछ ऐसे शायर भी सामने आए जिन्हों ने सच्ची और खरी शायरी के ख़ज़ाने में इज़ाफ़ा किया। उन शायरों में पृतपाल सिंह "बेताब" का नाम बड़ी अहमियत रखता है।

पृतपाल सिंह "बेताब" की शायरी के बेशुमार गुण पाठकों को मुतास्सिर करते हैं। इन गुणों के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन मैं यहाँ केवल इतना ही कहूंगा कि उप्रोक्त तकनीकी और तथा-कथित आधुनिक शायरों के हुजूम में जिन चन्द शायरों को सही माअनों में आधुनिक चिंतन का कवि कहा जा सकता है उन की फ़हरस्त कितनी ही छोटी क्यों ना हो वह पृतपाल सिंह "बेताब" के नाम के बग़ैर मुकम्मल नहीं हो सकती।

बेताब का कलाम एक मैख़ाना-ए-शेर की हैसियत रखता है और यह कलाम केवल अपने अन्दर के सफ़र और अपनी ज़ात के इज़हार का ज़ायक़ा ही नहीं रखता बलकि कलात्मिक बारीकियों के उन गुणों को भी अपने अन्दर समेटे हुए है जो तबीअत पर ज़ोर देने से नहीं बलकि शेरों के साथ ही बेसाख़ता शायर के दिल पर नाज़िल होते हैं और शेरियत में

पज़ीर नहीं है। लेकिन इस अदम[19] इसतिक़लाल[20] का नतीजा अभी वाज़ह नहीं हुआ है। इस वक़्त तो इस ग़ज़ल में दुनियाँ दिगर-गूँ[21] है और धोखे-बाज़ (deceptive) है। लेकिन ख़ुद वो शख़्स (प्रथम पुरुष/शायर) जो इस दुनिया का तजरुबा कर रहा है उस का आलम (दिगर-गूँ नहीं, ये बहुत वड़ी बात है)

इलाह-आबाद

शमस-उर-रहमान फ़ारूक़ी
(सरस्वती सम्मान)

(1) ग़ैर-मुतवक़्क़ा— जिस की उमीद न हो, उमीद से बहुत ज़ियादा (2) रसूमियात—ज़ाबिता, प्रम्परा (3) नामानूस—अजनबी, बेगाना (4) तनव्वा—भांति-भांति प्रकार का होना, (5) तबअ—तबीअत, मिज़ाज (6) फ़वायद—फ़ायदे (7) उसलूब—तरीक़ा, तर्ज़, रविश, शैली (8) तफ़क्कुर — चिंतन (9) महज़ूनी — ग़म, रंज (10) ख़ूँबहा--ख़ून की क़ीमत, मरने वाले की जान का मुआविज़ा जो उस के वारिसों को दिया जाता है (11) सलावत—मज़बूती (12) सानिहा — दुरघटना (13) महज़ूनी — ग़म, रंज (14) तमकीन—ताक़त, ज़ोर (15) दवाम—हमेशा क़ायम रहना (16) मुवस्सिर—असर करने वाला, कारगर (17) रीख़्त—टूट फूट, बिखराव (18, 20) इसतिक़लाल—दृढ़ता, धीरज (19) अदम—ना होना (21) दिगरगूँ—उलट पलट, बदला हुआ।

मुक़द्दमा

आज से कुछ समय पहले जब उर्दू शायरी में आधुनिकता का रूझान आम हुआ तो तकनीकी और तथा-कथित आधुनिक कवियों का एक हुजूम मंज़र-ए-आम पर आ गया। वक़्त गुजरता गया और इस हुजूम में इज़ाफ़ा होता गया लेकिन इस हुजूम के साथ ही साथ कुछ ऐसे शायर भी सामने आए जिन्हों ने सच्ची और खरी शायरी के ख़ज़ाने में इज़ाफ़ा किया। उन शायरों में पृतपाल सिंह "बेताब" का नाम बड़ी अहमियत रखता है।

पृतपाल सिंह "बेताब" की शायरी के बेशुमार गुण पाठकों को मुतास्सिर करते हैं। इन गुणों के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन मैं यहाँ केवल इतना ही कहूंगा कि उप्रोक्त तकनीकी और तथा-कथित आधुनिक शायरों के हुजूम में जिन चन्द शायरों को सही माअनों में आधुनिक चिंतन का कवि कहा जा सकता है उन की फ़हरस्त कितनी ही छोटी क्यों ना हो वह पृतपाल सिंह "बेताब" के नाम के बग़ैर मुकम्मल नहीं हो सकती।

बेताब का कलाम एक मैख़ाना-ए-शेर की हैसियत रखता है और यह कलाम केवल अपने अन्दर के सफ़र और अपनी ज़ात के इज़हार का ज़ायक़ा ही नहीं रखता बलकि कलात्मिक बारीकियों के उन गुणों को भी अपने अन्दर समेटे हुए है जो तबीअत पर ज़ोर देने से नहीं बलकि शेरों के साथ ही बेसाख़ता शायर के दिल पर नाज़िल होते हैं और शेरियत में

ढल कर कलाम को दिलकश और दिल आवेज़ बनाते चले जाते हैं। इस तरह के शेयरों की यहां ज़ियादा मिसालें देने की ज़रूरत नहीं है केवल कुछ शेर जो याद आ रहे हैं, पाठकों के लिए पेश कर रहा हूँ :—

पढ़ते रहे हमेशा पुरानी किताब हम।
और ढूँढते रहे हैं नया कोई बाब हम।

हम बस गए वहाँ मगर आबाद हो न पाए
कुछ शहर वो जदीद था कुछ हम क़दीम थे।

उस ने बदल के रख दिया नक़्शा मिरा तमाम
सब हो चुका तो पूछ रहा है रज़ा मिरी।

कुछ देर वो परिंदा उड़ाता रहा हमें
फिर यूँ हुआ कि भूल गए अपनी चाल हम।

प्रो० (डॉ०) जगन नाथ "आज़ाद"
जम्मू तवी।

दर्शन की नब्ज़ परखता कवि

अपनी ही तरह के आदमी हैं पृतपाल सिंह और अलग से चीन्हे जाने वाले शायर हैं बेताब। उनकी स्मृतियां लाजवाब हैं। उनके सवाल जरूरी हैं उनकी पड़ताल तटस्थ है। उनकी अस्मिता में सांझी-संस्कृति की अनुगूंज है। उनके तेवर बेख़ौफ़ हैं। उनकी टिप्पणियां बेचैन कर देने वाली होती हैं। मंझोले क़द का यह वरिष्ठ नौकरशाह एक तीखी नज़र का मालिक है। भूरी दाढ़ी और नफ़ीस कपड़ों संग दमकता चेहरा और शरारती मुस्कान के पीछे एकदम सधे ढंग से रियैक्ट करने की प्रकृति। शब्दों का साक्षी। जुबानों की राजनीति से परे। पारदर्शिता को थमाने वाला। उर्दू कविता को जीने वाला। जम्मू के नाम को देश के दूसरे कोनों तक खींच ले जाने वाला। **'बेताब'** जी में ऐसा बहुत कुछ है जो उन्हें एक सही रचनाकार के रूप में स्थापित करता है।

विभाजन का क़हर उनके परिवार पर भी टूटा और पुंछ का यह सिख-परिवार रिफ़्यूजी होकर एक अर्से तक भटकता रहा। सन् **1949** में, अंबाला में **'बेताब'** जी का जन्म हुआ। दसवीं तक की शिक्षा फ़िरोज़पुर में हुई तथा सन् **1964** में जम्मू आ गए। यहीं के साईंस कॉलेज में पढ़ते हुए सन् **1969-70** से लिखना शुरू किया। पहला मुशायरा सन् **1974** में पढ़ा और छपने-छपाने का सिलसिला शुरू हो गया। **'सुब-ए-उम्मीद'** (मुंबई), **'अवराक़'** (लाहौर). **'अलफ़ाज़'** (अलीगढ़) व **'शब ख़ून'** फिर **'सतूर' 'आजकल'** (दिल्ली) और **'मयार'** व **'तनाज़ुर'** जैसे कई उर्दू रिसाले। भारत भवन, भोपाल ने जो **'कवि भारती'** नामक श्रृंखला प्रारभ की थी उसकी दूसरी ही कड़ी में, सन् **1990** में उर्दू-कवि के रूप में भाग, इत्यादि। सन् **1980** में

पहला काव्य संकलन **'पेश ख़ैमा'** छपा जो सन् **1981-82** में **जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी** के पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ। इस पुस्तक के शीर्षक के पीछे वही अर्थ है कि, जब ईरान के लोग युद्ध पर निकलते थे तो जहां जंग होनी होती थी वहां फ़ौज की निशानी के तौर पर, एक ख़ैमा पहले से आगे लगाया जाता था। सन् **1984** में दूसरी पुस्तक **'सराब-दर-सराब'** (मृगतृष्णा) छपी व सन् **1995-96** में **'ख़ुदरंग'** हमारे सामने आयी। कुछ प्रतिनिधि कविताओं का अनुवाद अज़ीज़ परिहार ने **'द थर्ड स्ट्रैंड'** नाम से किया है और देवनागरी में यह काव्य-संकलन **'कैक्टस और गुलाब'** शीघ्र प्रकाश्य है। अन्य पुरस्कारों सहित, हाल ही में उन्हें जम्मू-कश्मीर सरकार की ओर से, साहित्य के लिए **'बैस्ट ईको एवार्ड'** से सम्मानित किया गया है।

मुझे याद आता है कि पिछले दिनों उन्होंने **'पंजाबी लेखक सभा, आर. एस. पुरा'** के एक सेमीनार में ग़ज़ल पर बेहद सूचनाप्रद पत्र पढ़ा था जिसका शीर्षक ही बेहद चौंकाऊ था : **'ग़ज़ल-कविता दी इक वणगी'**। कविता से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह एक आवश्यक आलेख है। इसमें से कुछ पंक्तियां बांट रहा हूं, 'ग़ज़ल भारत में फ़ारसी शायरी के ज़रिए आई है। **अमीर ख़ुसरो** जैसे प्रारंभिक भारतीय शायर ऐसी ग़ज़लें कहते रहे हैं कि शे'रों का एक मिसरा फ़ारसी का दूसरा हिंदवी का होता था। उर्दू भाषा के विकास के साथ-साथ ग़ज़ल भी पहले हिंदवी, फिर उर्दू में रची जाने लगी। फ़ारसी में भी ग़ज़ल अरबी ज़ुबान के माध्यम से दाख़िल होती है। ....ग़ज़ल दरअसल एक कविता नहीं बल्कि कुछेक कविताओं का गुलदस्ता होती है। ....असलीयत तो यह है कि फ़ारसी व उर्दू ग़ज़ल में आरंभ से ही दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान तथा कई अन्य विषयों से संबंधित शे'र कहे जाते रहे हैं। ....ग़ज़ल बहुत ही नाज़ुक सिनफ़ है। इसकी नज़ाकत को बरकरार रखते हुए यदि कोई शायर नये से नये विषयों को इसमें प्रवेश करा सके तो यह बहुत बढ़िया बात है। ....ग़ज़ल हिन्दी पिंगल के छंद में भी कही जा सकती है। मेरा निजी विचार है कि शायद **ख़लील बिन अहमद,** भारतीय पिंगल व संगीत से

परिचित था, कि उसने अरबी बहरें इन दोनों भारतीय विद्याओं की सहायता से कायम की हों। मुझे पक्का यक़ीन है कि भारतीय पिंगल व भारतीय शास्त्रीय संगीत, आठवीं सदी के **ख़लील बिन अहमद** के काल से बहुत पहले के समय से संबंधित हैं। ....अरूज़ का ज्ञान होना किसी व्यक्ति के लिए विद्वता का प्रमाण व गौरव की बात है परन्तु यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं कि प्रत्येक शायर को अरूज़ का ज्ञान भी हो। अरूज़ एक स्वतंत्र विद्या है, गणित के विषय की तरह। यदि कोई आदमी अरूज़ का ज्ञान अर्जित करके शायर बनना चाहे तो वह फ़ायलुन-फ़ायलुन की चक्रघिन्नी में ही फंसा रहेगा।

इसी तरह से यह सुलझा हुआ कवि मानता है कि उर्दू साहित्य, भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग है। वह मानता है कि उर्दू वालों का एक अलग वर्ग तैयार किया गया है जिसमें उन लोगों की जगह है ही नहीं जिनकी कि मातृभाषा उर्दू नहीं है, हालांकि ये निष्कासित लोग उर्दू-प्रेमी ही नहीं उर्दू लेखक भी हैं। **'बेताब'** इस तरह की राजनीति के सख़्त ख़िलाफ़ हैं। वे मानते हैं कि भाषा, जाति, धर्म, रंग व नस्ल भेद से परे है। इसी तरह से साहित्य के विकास के लिए वह अनुवाद को ज़रूरी मानते हैं। बेशक ग़ज़ल अपने मीटर, क़ाफ़िया व रदीफ़ के शिल्प के कारण अनूदित होनी असंभव है किन्तु कविता भी अनुवाद के ज़रिए स्वयं को संप्रेषित कर सकती है। **'बेताब'** मानते हैं कि उर्दू कहानी बीसवीं सदी की ही देन है तथा उर्दू-आलोचना गुटबंदी का शिकार है। यहीं वह प्रौग्रेसिव व जदीद लेखकों के आपसी मनमुटाव का ज़िक्र करते हुए बताते हैं कि सन् साठ के प्रगतिवादी लेखकों के उपरांत सन् सत्तर में ही जदीद (आधुनिक) लेखक सामने आए। इसके उपरांत जो तीसरी पीढ़ी आई वह इस लहजे से आज़ाद रही कि उसमें तरक़्क़ी पसंद भी रहे व आधुनिक भी। यहीं वह **शहरयार, कुमार पाशी, मुनीर नियाज़ी, असद बदाऊनी, ग़्यास अहमद, सलाहु-दीन परवेज़ व शीन काफ़ निज़ाम** का नाम गिनाते हैं। वह सवाल दाग़ते हैं कि **यह उत्तर आधुनिकता क्या है?** क्या किसी लेखक को दर्शन के हिसाब से ज़बरदस्ती लिखवाया

जा सकता है ? फिर आधुनिकता तो कभी न ख़त्म होने वाली स्थिति विशेष है। हमारे यहां उत्तर-आधुनिकता क्या हुई भला ?

'बेताब' कहते हैं कि वे उर्दू में तो किसी की शायरी से मुतास्सिर नहीं किन्तु **मीरा** की कविता उनके अंतर्मन में प्रवहित होती रहती है। संभवतः इसीलिए एक ख़ास तरह का अध्यात्म व रहस्यवाद उनकी शायरी में है जो अमूमन प्रथम पुरुष वाले लहजे से होकर ब्रह्मांड में फैल जाने वाले अस्तित्ववाद तक पहुंचती है। दर्शन बार-बार **'बेताब'** की कविता में दस्तक देता मिलता है **'मैं कि मंज़िल भी हूं, निशां भी हूं।'** उन की कविता में पानी। सांप की बार-बार मौजूदगी एक द्वंद्व को ही रेखांकित करती है। **'मन आंगन का पिंजरा मैं, उसमें क़ैद परिंदा मैं / वन में रस्ता भूल गया, दूर देश का राजा मैं !'** की तर्ज़ पर गुरुवाणी या भक्त कवियों की संवेदना को अर्जित करना इनका हासिल है। दूसरी ओर का उजाला या मछेरों को जाल मिलने की ख़्वाहिश के साथ मछली के लिए भी शऊर तथा ज़ेर ए आब की तमन्ना रखने वाले इस शायर के पास हालांकि ख़ुद का अर्जित किया ज्ञान है किन्तु उनका अध्यात्म शायरी को बहुत कुछ इलहाम के नज़दीक ही रखता है। **गुरु नानक, रविदास व कबीर** की शायरी के उद्धारण रखते हुए **'बेताब'** मानते हैं कि कविता समाज को बदलने में सहायक होती ही है। **शायरी, जनमानस के मुहावरे ही लेती है।** वह सीधी ज़ुबान के पक्षधर हैं और अपनी कविता से समाज की सेवा करना चाहते हैं। हालांकि हिन्दू मिथक की बात करने पर उर्दू वाले उनसे नाख़ुश हैं, फिर भी वह मानते हैं कि उनकी कविता आम आदमी के पास जाती है क्योंकि उसमें, उसे अपनी रंगत मिलती है।

जम्मू तवी

मनोज शर्मा



रास्ते तो कई खुले हैं मियाँ।
हमीं कुछ बन्द हो चुके हैं मियाँ।

तुम जहाँ हमको ढूंढते हो अभी
हम वहाँ से गुज़र चुके हैं मियाँ।

धुन्ध में कुछ नज़र नहीं आता
पीछे मुड़ कर जो देखते हैं मियाँ।

दूसरों से ख़ुद अपने कूचे में
हम पता अपना पूछते हैं मियाँ।

तुम किसी नाम से पुकारो हमें
हम तो पहचान खो चुके हैं मियाँ।

सम्त[1] कैसी यहाँ सफ़र कैसा
भीड़ में हम भी चल रहे हैं मियाँ।

दश्त[2] वीरान फिर से है "बेताब"
क़ाफ़िले शब के उठ गए हैं मियाँ।

(1) सम्त=दिशा (2) दश्त=मरुस्थल



लम्हा लम्हा खुल के फिर पैकर[1] खुला।
कितनी मुश्किल से मगर पत्थर खुला।

पाँव मेरे रास्ता ख़ुद हो गए
हर क़दम फिर इक नया मंज़र खुला।

दूर तक सारे जज़ीरे खिल उठे
सीप के अन्दर वो जब गौहर खुला।

सारे दरवाज़े खुले बाहर की सम्त[2]
एक दरवाज़ा मगर अन्दर खुला।

ख़ुद ही साहिल हो गया जो था भँवर
जब सफ़ीने[3] के लिए सागर खुला।

आस्माँ चादर तिरी फट जाएगी
मेरे अन्दर का अगर जौहर खुला।

कुछ तो हम पहले से ही आज़ाद थे
और कुछ परवाज़[4] में भी पर खुला।

बन्द था "बेताब" ये अपना मकान
ज़लज़ला आया तो इसका दर खुला।

(1) पैकर=शक्ल, सूरत (2) सम्त=दिशा
(3) सफ़ीना=नाव (4) परवाज़=उड़ान



जादू था या ज़ोर बहुत था पानी में।
आ पहुँचे हम कितने दूर रवानी में।

इतना है बस याद कि हम डूबे जिस वक़्त
कई सफ़ीने तैर रहे थे पानी में।

क़िस्सा ख़त्म हुआ तो ये महसूस हुआ
गोया[1] हम भी थे मौजूद कहानी में।

दुख में जो दीवाने हैं वो जानते हैं
कितना सुख मिलता है नोहा-ख़्वानी[2] में।

सहल[3] डगर पर चल कर ये मालूम हुआ
कितनी मुश्किल होती है आसानी में।

मँज़िल थी मक़्सूद[4] ख़िरद[5] की और सफ़र
क्या क्या हम से क़दम उठे नादानी में।

अभी ना कर "बेताब" जज़ीरों की बातें
आगे और सफ़र है इस तुग़ियानी[6] में।

○

(1) गोया=जैसे (2) नोहा-ख़्वानी=मातम, रोना-पीटना
(3) सहल=आसान (4) मक़्सूद=लक्ष्य (5) ख़िरद=अक़्ल
(6) तुग़ियानी=सैलाब, पानी का चढ़ना



ये ज़मीं हूँ वो आस्माँ भी हूँ।
मैं यहाँ भी हूँ मैं वहाँ भी हूँ।

मरतबा[1] मेरा जो भी है सो है
बहुत अच्छा हूँ मैं जहाँ भी हूँ।

मुझ से बाहर मिरा सुराग़ नहीं
मैं कि मन्ज़िल भी हूँ निशाँ भी हूँ।

मुझ से मेरे सिवा ना कुछ भी माँग
मैं सफ़र भी हूँ अरमुग़ाँ[2] भी हूँ।

तन-ए-तन्हा[3] भी ग़ामजन[4] हूँ और
साथ सब के रवाँ-दवाँ[5] भी हूँ।

ज़िन्दगी की हूँ बेनिशानी भी
मैं किसी क़ब्र का निशाँ भी हूँ।

मुझ को देखो तो हूँ कोई ज़र्रा
मुझ को सोचो तो बेकराँ[6] भी हूँ।

ख़ुद से आगे निकल के सोचूँ अगर
मैं कोई याद-ए-रफ़्तगाँ[7] भी हूँ।

फ़ख़्र भी है कि फिर भी हूँ "बेताब"
अपनी हस्ती से बदगुमाँ भी हूँ।

(1) मरतबा=दर्जा (2) अरमुग़ाँ=सौग़ात
(3) तन-ए-तन्हा=अकेला (4) गामज़न=चलने वाला
(5) रवाँ-दवाँ=तेज़ चलता हुआ (6) बेकराँ=दूर-दूर तक फैला हुआ (7) याद-ए-रफ़्तगां=बीते हुए की याद



ध्यान दस्तक पे लगा रहता है।
और दरवाज़ा खुला रहता है।

मेरी तन्हाई की पगडन्डी पर
मेरे हमराह[1] ख़ुदा रहता है।

ख़ाक भी रहती नहीं इन्साँ की
नाम पत्थर पे ख़ुदा रहता है।

किसी मलबे से नहीं पुर होता
मेरे अन्दर जो ख़ला[2] रहता है।

हम को ख़ामोश ना जानो साहिब
अन्दर इक शौर बपा[3] रहता है।

खींचता है वो लकीरें क्या-क्या
और फिर उन में घिरा रहता है।

मुझ को देता है वो गहरे पानी
ख़ुद जज़ीरों में बसा रहता है।

क़ुमक़ुमें[4] रहते हैं रौशन "बेताब"
दिल ही कम्बख़्त[5] बुझा रहता है।

(1) हमराह=साथ चलने वाला, साथी (2) ख़ला=ख़ालीपन
(3) बपा=बरपा, खड़ा (शौर) मचा हुआ
(4) क़ुमक़ुमें=बिजली के बल्ब, लालटेन
(5) कम्बख़्त=बदक़िस्मत



किस का किस से क्या होता है।
अपना ही रिश्ता होता है।

अबर[1] का अपना क्या होता है।
काम समुन्दर का होता है।

मुझ को अपनी सोच से अक्सर
हमले का ख़तरा होता है।

जिन से हम वाक़िफ़ नहीं होते
उन से भी रिश्ता होता है।

हद्द-ए-नज़र[2] तक देख चुके हम
इस से आगे क्या होता है।

कभी-कभी लगता है मुझको
सूरज भी ठन्डा होता है।

यहाँ कहीं मर जाता है जो
वहाँ कहीं पैदा होता है।

सोचो तो "बेताब" समुन्दर
पानी का सहरा[3] होता है।

(1) अबर=बादल, घटा, बदली
(2) हद्द-ए-नज़र=जहाँ तक नज़र जा सकती है
(3) सहरा=मरुस्थल

○

जुनूँ[1] में हम ने बेशक तय किए थे।
कड़े लेकिन बहुत वो मरहले थे।

वो पागलपन ही था शायद हमारा
जो सहरा[2] में समुन्दर देखते थे।

गुज़र करना तो कुछ मुश्किल नहीं था
मगर हम और भी कुछ सोचते थे।

क़सूर ऐसा था वर्ना क्या हमारा
फ़क़त[3] अपनी तरह से सोचते थे।

ना रुकना था हमें रस्ते में वर्ना
सुनोबर[4] बाहें फैलाए खड़े थे।

हवा तो ले उड़ी होती हमें भी
मगर अपनी ज़मीं से हम जुड़े थे।

बरसने को बहुत पत्थर थे अब के
दरख़्तों पर समर[5] अच्छे लगे थे।

अलग पहचान थी "बेताब" किस की
क़ितारों में कहीं हम भी खड़े थे।

(1) जुनूँ=दीवानगी (2) सहरा=मरुस्थल
(3) फ़क़त=केवल (4) सुनोबर=देवदार, चीड़ आदि
(5) समर=फल



गुमशुदा[1] वक़्त की रफ़्तार में है।
एक पैकर[2] मेरे पन्दार[3] में है।

किसी वादी में उतरती होगी
वो जो पगडन्डी सी कुहसार[4] में है।

हर क़दम है मिरा उस की जानिब[5]
बात कुछ वादी-ए-पुरख़ार[6] में है।

सामने जिस के जज़ीरा है कोई
इक दरीचा[7] किसी दीवार में है।

देखता हूँ जिसे चेहरा-चेहरा
वो स्याही मिरे किरदार[8] में है।

सई-ए-हासिल[9] है अभी लाहासिल[10]
इक ज़माना है कि रफ़्तार में है।

एक तूफ़ान-ए-बला[11] है "बेताब"
और कश्ती अभी मंजधार में है।

(1) गुमशुदा=खोया हुआ (2) पैकर=शक्ल, सूरत (3) पन्दार=ख़्याल, कल्पना (4) कुहसार=पहाड़, पहाड़ी जगह (5) जानिब=दिशा में (6) वादी-ए-पुरख़ार=कांटों से भरी घाटी (7) दरीचा=खिड़की (8) किरदार=चरित्र (9) सई-ए-हासिल=ऐसी दौड़ धूप जिस का कुछ फ़ायदा होने की उमीद हो (10) लाहासिल=जो नहीं मिला (11) तूफ़ान-ए-बला=बड़ा ख़तरनाक तूफ़ान



घर में कुछ तो कमी रह गई।
वर्ना क्यों बेघरी रह गई।

रह गईं मँज़िलें राह में
साथ आवारगी रह गई ।

हम से नाकामी - ए - आरज़ू
कब कहाँ क्या कमी रह गई।

या जो सैलाब वो थम गया
वो जो थी इक नदी रह गई।

सुबह-दम आज यह क्या हुआ
चार सू रात सी रह गई।

वक़्त "बेताब" वो आ पड़ा
नाज़ुकी सब धरी रह गई।



गुमगश्ता[1] हिकायात[2] को ढूंढूं फिर से।
बिखरे हुए औराक़[3] समेटूं फिर से।

हाथों में जब आएँ तो उन्हें छोड़ भी दूं
आवारा परिंदों को पुकारूँ फिर से।

जिस शहर में पहुँचूं उसे मँज़िल जानूँ
कुछ देर में कुछ सोच के चल दूं फिर से।

सिमटा हूँ ज़रूरत से ज़ियादा शायद
इक बार यही सोच के बिखरूँ फिर से।

ये ज़ीस्त[4] भी उलझन-सी कोई उलझन है
रह रह के बुनूं और उधेड़ूँ फिर से।

ख़्वाबों में तनाबों[5] को कसूँ हूँ "बेताब"
जागूं हूँ तो ख़ैमे[6] को उखाड़ूँ फिर से।

(1) गुमगश्ता=खोई हुई (2) हिकायात=कहानियाँ
(3) औराक़=पन्नें (4) ज़ीस्त=जीवन
(5) तनाव=रस्सी (6) ख़ैमा=तंबू



ग़ैर मख़्सूस[1] कोई राहगुज़र भी रखिए।
अपनी यादों में मगर सम्त-ए-सफ़र[2] भी रखिए।

अपनी तस्वीर में सहरा ही अगर रखना है
हो सके तो किसी गोशे में शजर[3] भी रखिए।

घर अगर घर हो तो फिर गुम्बद-ए-बेदर[4] क्यों हो
दस्तकों की हो जो उम्मीद तो दर भी रखिए।

अपने आंगन में उगा लीजिए मौसम का शजर
उस में मुमकिन हो तो एक आध समर[5] भी रखिए।

सीधे रस्तों पे हमेशा भी न क़रिए तकिया
अपनी जागीर में इक तिरछी डगर भी रखिए।

इसी सहरा में लगा लीजिए ख़ैमा "बेताब"
दिल में महफ़ूज़[6] मगर गर्द-ए-सफ़र भी रखिए।

(1) ग़ैर मख़्सूस=जो पहले से तय शुदा न हो
(2) सम्त-ए-सफ़र=यात्रा की दिशा (3) शजर=वृक्ष
(4) गुम्बद-ए-बेदर=बिना दरवाज़े का गुम्बद
(5) समर=फल (6) महफ़ूज़=संभाल कर



ग़ैर मख़्सूस[1] कोई राहगुज़र भी रखिए।
अपनी यादों में मगर सम्त-ए-सफ़र[2] भी रखिए।

अपनी तस्वीर में सहरा ही अगर रखना है
हो सके तो किसी गोशे में शजर[3] भी रखिए।

घर अगर घर हो तो फिर गुम्बद-ए-बेदर[4] क्यों हो
दस्तकों की हो जो उम्मीद तो दर भी रखिए।

अपने आंगन में उगा लीजिए मौसम का शजर
उस में मुमकिन हो तो एक आध समर[5] भी रखिए।

सीधे रस्तों पे हमेशा भी न करिए तकिया
अपनी जागीर में इक तिरछी डगर भी रखिए।

इसी सहरा में लगा लीजिए ख़ैमा "बेताब"
दिल में महफ़ूज़[6] मगर गर्द-ए-सफ़र भी रखिए।

(1) ग़ैर मख़्सूस = जो पहले से तय शुदा न हो
(2) सम्त-ए-सफ़र = यात्रा की दिशा (3) शजर = वृक्ष
(4) गुम्बद-ए-वेदर = बिना दरवाज़े का गुम्बद
(5) समर = फल (6) महफ़ूज़ = संभाल कर



हुजूम-ए-बेकरां[1] के दरमियां हैं।
किसी को क्या बताएँ हम कहाँ हैं।

परिंदे हैं बहुत दूर आस्मां पर
ज़मीं पर तो फ़क़त[2] परछाइयां हैं।

शजर[3] सब नोच डाले हैं खिज़ां ने
यही चंद एक पत्ते सख़्त-जां[4] हैं।

शब-ए-रफ़्ता[5] वतन से जो उड़े थे
ख़बर किस को परिंदे वो कहां हैं।

अब आगे जाए तो कोई किधर जाए
यहां चारों तरफ़ पगडंडियाँ हैं।

कहीं तो जोड़ लेते सिलसिला हम
मगर जो राबिते[6] हैं बेनिशाँ हैं।

बुलाती हैं हवाएँ हम को "बेताब"
मगर हम तो ग़ुबार-ए-रफ़्तगाँ[7] हैं।

(1) हुजूम-ए-बेकराँ=बहुत अधिक भीड़ (2) फ़क़त=केवल (3) शजर=वृक्ष (4) सख़्त-जां=वह व्यक्ति जिस की जान बड़ी मुश्किल से निकले (5) शब-ए-रफ़्ता=पिछली रात (6) राबिते=जोड़ने वाले सूत्र (7) ग़ुबार-ए-रफ़्तगाँ=जाने वालों के पीछे उड़ती हुई धूल



हुजूम-ए-बेकरां[1] के दरमियां हैं।
किसी को क्या बताएँ हम कहाँ हैं।

परिंदे हैं बहुत दूर आस्मां पर
ज़मीं पर तो फ़क़त[2] परछाइयां हैं।

शजर[3] सब नोच डाले हैं ख़िज़ां ने
यही चंद एक पत्ते सख़्त-जां[4] हैं।

शब-ए-रफ़्ता[5] वतन से जो उड़े थे
ख़बर किस को परिंदे वो कहां हैं।

अब आगे जाए तो कोई किधर जाए
यहां चारों तरफ़ पगडँडियाँ हैं।

कहीं तो जोड़ लेते सिलसिला हम
मगर जो राबिते[6] हैं बेनिशाँ हैं।

बुलाती हैं हवाएँ हम को "बेताब"
मगर हम तो ग़ुबार-ए-रफ़्तगाँ[7] हैं।

(1) हुजूम-ए-बेकरां=बहुत अधिक भीड़ (2) फ़क़त=केवल (3) शजर=वृक्ष (4) सख़्त-जां=वह व्यक्ति जिस की जान बड़ी मुश्किल से निकले (5) शब-ए-रफ़्ता=पिछली रात (6) राबिते=जोड़ने वाले सूत्र (7) ग़ुबार-ए-रफ़्तगां=जाने वालों के पीछे उड़ती हुई धूल



साहिलों से पानियों में खो गए हम।
दूर गहराई के बासी हो गए हम।

फिर सफ़र क्या और सफ़र के सिलसिले क्या
राह में नींद आ गई और सो गए हम।

सरहदों को फाँदना मुमकिन कहाँ था
ख़्वाब में क्या-क्या परिंदे हो गए हम।

बर्फ़ वादी में तन-ए-तनहा[1] निकल आए
दाग़ सब जलती रुतों के धो गए हम।

रंग उस बाज़ार में बिखरे थे क्या-क्या
कैसे नादाँ थे कि अंधे हो गए हम।

अब तो साहिल की तमन्ना बेसबब है
एक मुद्दत से जज़ीरा हो गए हम।

(1) तन-ए-तनहा = अकेले



मैं बेतरतीब[1] फैला सिलसिला हूँ।
सिमट जाऊँ कहीं से सोचता हूँ।

फ़क़त अपने अंधेरे की ज़िया हूँ।
बस इतना जानता हूँ जल रहा हूँ।

धुआँ चारों तरफ़ फैला हुआ है
मैं घर से बाहर आकर खो गया हूँ।

हवा हूँ मैं कहाँ घर-बार मेरा
यह क्या दीवार-ओ-दर[2] में घिर गया हूँ।

मुझे तहलील[3] होना था हवा में
न जाने कैसे पत्थर हो गया हूँ।

नहीं काबू में रहते पाँव मेरे
है कोई ताल जिस पर नाचता हूँ।

मुझे मुझ से मिला दे कोई "बेताब"
मैं अपने आप से बिछड़ा हुआ हूँ।

○

(1) बेतरतीब=अव्यवस्थित, क्रमहीन, गडमड, बेसिलसिला, बेक़ायदा (2) दीवार-ओ-दर=दीवारें और दरवाज़ें, घर (3) तहलील होना=घुल जाना



टूट कर अपनी ज़मीं से हम हवा हो जाएँगे।
और गुज़रे मौसमों की दास्ताँ कहलाएँगे।

सरहदों के पास जो ऊँची उड़ानें भर गए
क्या ख़बर थी वो परिंदे लौट कर भी आएँगे।

ख़ुद-जिलावतनी के अंधे शौक़ में सोचा न था
अपने घर को लौटते हम इस क़दर घबराएँगे।

हम ने सोचा था कि नज़्ज़ारा करेंगे भीड़ का
क्या ख़बर थी अपना चेहरा भी गँवा कर आएँगे।

साहिलों पर बेबसी के ख़ोल[1] हैं "बेताब" हम
दूर दरियाओं की तुग़यानी[2] में ख़ुद बह जाएँगे।

(1) ख़ोल=छिलका, ऊपर का ग़िलाफ़
(2) तुग़यानी=बाढ़, सैलाब, पानी का चढ़ाव



आख़रश[1] उस बेजिहत[2] दरिया में बह जाना पड़ा।
हार कर सोने की ज़ंजीरों को अपनाना पड़ा।

इक घने जंगल की जानिब दौड़ते जाते थे लोग
एक दिन उस भीड़ में हम को भी खो जाना पड़ा।

हट के चलने में लताफ़त[3] थी मगर क्या कीजिए
ज़ीस्त[4] जो करना थी आख़िर राह पर आना पड़ा।

सच से तो मुमकिन नहीं था उन सवालों का जवाब
झूठ क्या-क्या कह के उस बच्चे को बहलाना पड़ा।

हर तरफ़ अफ़रेत[5] ने जब अपने पर फैला दिए
और कुछ चारा नहीं था घर को ठुकराना पड़ा।

साअतें[6] "बेताब" जब ख़स्ता[7] दरीचे हो गईं
कोरा काग़ज़ घर की दीवारों पे चिपकाना पड़ा।

○

(1) आखरश=आखरकार, अंत में (2) बेजिहत=दिशाहीन
(3) लताफ़त=मज़ा (4) ज़ीस्त=जीवन
(5) अफ़रेत=भूत-प्रेत (6) साअतें (साअत)=पल, क्षण
(7) ख़स्ता=टूटे हुए, घायल, बदहाल



गीली मिट्टी की तरह हूं मैं फिसलता जा रहा हूँ।
हादिसा कैसा है ये ख़ुद से उखड़ता जा रहा हूं।

ज़िंदगी मुझ पर पहेली की तरह खुलती नहीं है
सिलसिला-दर-सिलसिला ख़ुद से उलझता जा रहा हूँ।

दश्त[1] हैं कुहसार[2] हैं सहरा हैं अब मेरा मुक़द्दर
टूट कर अपने समुंदर से बिखरता जा रहा हूँ।

एक मुद्दत से है पैहम[3] ज़लज़लों का फ़ैज़[4] मुझ पर
मैं भी कैसा शहर हूँ पल-पल उजड़ता जा रहा हूँ।

एक अनजाना सफ़र है एक अनजानी डगर है
और पगडंडी पे अपनी धुन में चलता जा रहा हूँ।

सब हिफ़ाज़त की फ़सीलें[5] ख़स्ता[6] होती जा रही हैं
लम्हा-लम्हा अपने हाथों से निकलता जा रहा हूँ।

रेत पर लिखा हुआ "बेताब" कोई लफ़्ज़ हूँ मैं
ज़र्रा-ज़र्रा आँधियों के साथ उड़ता जा रहा हूँ।

○

(1) दश्त=जंगल (2) कुहसार=पहाड़
(3) पैहम=लगातार (4) फ़ैज=कृपा
(5) फ़सील=दीवार (6) खस्ता=टूटता हुआ, भुरभुरा



लफ़्ज़ क्या-क्या जुबान ही में रहे।
तीर क्या-क्या कमान ही में रहे।

हम जो कुछ अपनी शान ही में रहे।
मुस्तक़िल इम्तिहान ही में रहे।

छत से ऊंचा भी हो गया सैलाब
हम कि अमन-ओ-अमान ही में रहे

क्या करें और कोई राह न थी
उम्र भर इस जहान ही में रहे।

दर-बदर उन दिनों भी थे लोगो
हम जब अपने मकान ही में रहे।

ला-तअल्लुक़[1] भी हो गए "बेताब"
और ज़मान-ओ-मकान[2] ही में रहे।



(1) ला-तअल्लुक़=कोई सरोकार न होना
(2) ज़मान-ओ-मकान=दुनियां, ज़माना



मैं तो बँधा हुआ था छुड़ा ले गया मुझे ।
हमज़ाद[1] मेरा मुझ से चुरा ले गया मुझे ।

फिर चाहते हुए भी मैं वापस न आ सका
दरिया जब अपने साथ बहा ले गया मुझे ।

चक्खा था राह चलते हुए इक समर[2] कहीं
फिर क्या था सब्ज़ बाग़ उड़ा ले गया मुझे ।

माँगा था अबर[3] मैं ने ज़मीनों के वास्ते
और आसमां पे दस्त-ए-दुआ[4] ले गया मुझे ।

"बेताब" अंधे मोड़ पे रोका था पाँव ने
फिर हादिसा ख़ुद आगे बढ़ा ले गया मुझे ।

○

(1) हमज़ाद=वह रिवायती शैतान जो आदमी के साथ पैदा होता है और साथ-साथ रहता है
(2) समर=फल (3) अबर=बादल
(4) दस्त-ए-दुआ=दुआ के लिए उठा हुआ हाथ



मंज़र वो उस के बाद फिर आया कभी न था।
पीछे भी हम ने रख़श[1] को मोड़ा कभी न था।

कंधे पे लाश भीड़ भी चारों तरफ मगर
अपना जनाज़ा हम ने निकाला कभी न था।

बस हो गए थे अपने रवय्ये से अजनबी
रिश्ता भी हम ने शहर से तोड़ा कभी न था।

फिर से खँडर मकान में तबदील हो गया
वो ज़लज़ला मगर हमें भूला कभी न था।

दीवार-ओ-दर की क़ैद तो थी बार-ए-जां[2] मगर
यूँ दश्त[3] में भटकता भी चाहा कभी न था।

"बेताब" हम बसा भी चुके ये नया नगर
लेकिन पुराना शहर भी छूटा कभी न था।

(1) रख़्श=घोड़ा (2) बार-ए-जां=जान पे बोझ
(3) दश्त=जंगल, सेहरा



याद है सर्व-ओ-समन[1] की ख़ुश्बू।
अपने गुमगश्ता[2] वतन की ख़ुश्बू।

मुझ को भटकाती है सहरा-सहरा
ख़्वाब में एक चमन की ख़ुश्बू।

उस ने अलफ़ाज़[3] को मानी न दिए,
और फैला दी सुख़न[4] की ख़ुश्बू।

क्यों तआक़ुब[5] में है मेरे आख़िर
शहर आ पहुँची है बन की ख़ुश्बू।

खेत चिड़ियों ने चुगे हैं जब से
उड़ गई कोह्-ओ-दमन[6] की ख़ुश्बू।

उस ने नस-नस में उतर कर "बेताब"
छीन ली मेरे बदन की ख़ुश्बू।

○

(1) सर्व-ओ-समन=फूल-बूटे, हरियाली
(2) गुमगश्ता=खोए हुए (3) अलफ़ाज़=शब्द
(4) सुख़न=बात, गुफ़्तगू (5) तआक़ुब=पीछा करना
(6) कोह्-ओ-दमन=पहाड़ और बस्ती



मैं जानता हूँ इन अंधे मोड़ों के बाद क्या है।
नया सफ़र है मगर पुराना ही सिलसिला है।

मैं कूचा-कूचा ख़ुद अपने घर की तलाश में हूँ
मिरे नगर का हर एक रस्ता बदल चुका है।

हमीं गुज़रते हैं बेख़याली में रोज़ वर्ना
दरख़्त मीठे फलों से अब भी लदा हुआ है।

मैं पस्तियों[1] की मसाफ़तों[2] में हूँ पा-शिकस्ता[3]
पहाड़ मुझ को बुलंदियों से पुकारता है।

बजा कि मंज़िल भी एक रस्ता भी एक लेकिन
सड़क के दोनों किनारों में एक फ़ासला है।

(1) पस्ती=नीचाई, गहराई, ग़ार
(2) मसाफ़त=दूरी, फ़ासला, सफ़र
(3) पा-शिकस्ता=चलने फिरने से माज़ूर, मजबूर, टूटे हुए पाँव



नाख़ुदा[1] के न अब ख़ुदा के रहे।
हम फ़क़त अपनी ही अना[2] के रहे।

ख़ुद को सैलाब में बहा के रहे।
हम ज़मीनें सभी गँवा के रहे।

रास्तों में भटक गए हम लोग
कुछ बक़ा[3] के तो कुछ फ़ना[4] के रहे।

हम थे कुछ और क़िस्म के इन्सान
रहने वाले तो घर सजा के रहे।

आग से थी हमें कोई निस्बत[5]
आख़रश अपना घर जला के रहे।

भागते अपनी ज़ात से क़्यूंकर
इस़ी दुनिया में दुम दबा के रहे।

ढूंढते ख़ुद को थे हजूमों में
हाफ़िज़ा[6] अपना भी गँवा के रहे।

शौक़-ए-सौदागरी में हम "बेताब"
अपना सरमाया सब लुटा के रहे।



(1) नाख़ुदा=माँझी, मल्लाह (2) अना=ख़ुदी
(3) बक़ा=ज़िंदा रहना, जीवन (4) फ़ना=मौत, ख़ातमा
(5) निस्बत=रिश्ता (6) हाफ़िज़ा=याददाश्त



परिंदे बीती रुतों के उड़ा रही है हवा।
कई दिनों से मिरा दिल दुःखा रही है हवा।

उड़ा के लाती है चिंगारियाँ कहाँ से कहाँ
मज़े-मज़े से भरे घर जला रही है हवा।

इसे ख़बर भी नहीं टूट कर गिरे क्यूंकर
यहाँ-वहाँ ये जो पत्ते उड़ा रही है हवा।

फ़सील-ए-ज़ात[1] से हम ख़ुद निकल नहीं पाते
वगर्ना[2] राह में आंखें बिछा रही है हवा।

हवा की राह नहीं रोकती कोई सरहद
कहां के गीत कहां गुनगुना रही है हवा।

बिखर चुकी है जो ख़ुश्बू सिमट न पाए गी
यह सब्ज़ बाग़ हमें क्यूं दिखा रही है हवा।

ये क़ाफ़िला तो बहुत दूर जा चुका "बेताब"
हमें फ़ज़ूल में वापस बुला रही है हवा।

(1) फ़सील-ए-ज़ात=जिस्म की दीवार
(2) वगर्ना=वर्ना



कार्वान-ए-बेमँज़िल रात-रात चलता है।
इक चिराग़ बुझता है इक चिराग़ जलता है।

सिलसिले जज़ीरों के साहिलों से मिलते हैं
पानियों से बाहर भी रास्ता निकलता है।

सैल-ए-बेकरां[1] बन कर आए मेरे सहरा में
बूँद-बूँद कर के क्यूं आसमाँ पिघलता है।

अपने-अपने चेहरों को सब तलाश करते हैं
कौन इन हजूमों में किस के साथ चलता है।

फिर से इक नया मौसम फिर से कुछ नए आसार
फिर ज़मीं बदलती है आस्माँ बदलता है।

इस डगर को फ़ुरसत से देखना कहाँ मुमकिन
इक हजूम रुकता है इक हजूम चलता है।

काँच के दरीचों को बंद ही रखो "बेताब"
सरफिरी हवाओं पर किस का ज़ोर चलता है।

○

(1) सैल-ए-बेकरां=बहुत बड़ा बहाव



लिए जाते हो सवालात कहां ?
भीड़ में इन के जवाबात कहां ?

इन सराबों[1] में लगा लो दिल को
ज़र्द सहराओं[2] में बरसात कहां ?

याद होगा तुझे ऐ गर्द-ए-सफ़र
मुझ से बिछड़ी थी मिरी ज़ात कहां ?

राज़ सदियों के जिन्हें थे मालूम
रह गए जाने वो लम्हात[3] कहां ?

दिन की दहलीज़ पे सोचूं "बेताब"
जाएगी अब यह स्याह रात कहां ?

○

(1) सराब=मृग तृष्णा (2) सहरा=मरुस्थल
(3) लम्हात=लम्हे, पल, क्षण



पानियों का भी सिलसिला रखिए।
साहिलों से भी राबिता[1] रखिए।

भूल जाए न अपनी शक्ल कहीं
रू-ब-रू[2] कोई आइना रखिए।

क्या ख़बर लौटना पड़े इक दिन
याद जंगल में रास्ता रखिए।

क़ुर्ब[3] का भी तो एक फ़ोकस है
दरम्यां कुछ तो फ़ासला रखिए।

भीड़ में खो न जाइए "बेताब"
कुछ निकलने का रास्ता रखिए।



(1) राबिता=मेल-जोल, सम्बंध
(2) रू-ब-रू=आमने-सामने (3) क़ुर्ब=नजदीकी



रहे भी ख़ुद में हम रहे भी नहीं।
कभी अपनी तरह सजे भी नहीं।

ख़ेमा-बस्ती[1] कोई न रास आई
हम वो उजड़े कि फिर बसे भी नहीं।

उखड़ अपनी ज़मीन से भी गए
असामानों में हम उड़े भी नहीं।

कुछ भी क़ीमत के नाम पर न मिला
बिक गए और हम बिके भी नहीं।

जिन की तस्ख़ीर[2] की थी जंग के बाद
उन पहाड़ों पे हम चढ़े भी नहीं।

वो खुला या नहीं मगर "बेताब"
दर-ए-दस्तक[3] पे हम रुके भी नहीं।



(1) खेमा-बस्ती=तंबुओं की बस्ती (2) तस्खीर=जीत
(3) दर-ए-दस्तक=जिस दरवाजे पे दस्तक दी जाए

○

शहरों में रहा उजड़ा रहा बिखरा रहा हूँ।
पहुँचा हूँ जो सहरा में तो आबाद हुआ हूँ।

गुज़रे हुए दिन-रात मुझे मिल न सकें गे
अब कौन-सी उम्मीद पे घर लौट रहा हूँ।

यूँ धूप से बचना मिरा मुमकिन है कहाँ तक
गिरती हुई दीवार के साए में खड़ा हूँ।

इस भीड़ में है फ़िक्र किसे किस को ख़बर है
मैं जिस्म से शामिल हूँ मगर दिल से जुदा हूँ।

घर वाले मुझे ढूंढ रहे हैं कहीं बाहर
मैं अपने ही घर के किसी कोने में पड़ा हूँ।

कटती है जो कुछ थोड़ी तो बढ़ जाती है कुछ और
जो क़ैद-ए-मुशक़्क़त की सज़ा काट रहा हूँ।

ज़ाहिर में तो रास आ गईं ये बस्तियाँ "बेताब"
अंदर से मैं ग़ारों की तरफ़ लौट रहा हूँ।



घाट अपना रहा न घर ही रहा।
अब तो बाक़ी फ़क़त सफ़र ही रहा।

पत्थरों ही में नक़्श बाक़ी रहे
न वो हाथों में अब हुनर ही रहा।

शहर तो शहर था बहर-सूरत[1]
यह अलग बात मैं खंडर ही रहा।

अगले मौसम का इंतज़ार करें
पेड़ अब के तो बेसमर[2] ही रहा।

बारिशें जंगलों में होती रहीं
मैं कि सहरा-ए-बेशजर[3] ही रहा।

हम ने बनवास ले लिया बेशक
याद इस हाल में भी घर ही रहा।

बेघरी उस की देखिए "बेताब"
घर में रह कर जो दर-ब-दर ही रहा।

○

(1) बहर-सूरत=हर हाल में (2) बेसमर=बिना फल के
(3) सहरा-ए-बेशजर=ऐसा रेगिस्तान जिस में कोई वृक्ष न हो



दरमियां कुछ तो पुरानी दूरियां रह जाएँगी।
देखना महफ़िल में भी तन्हाइयाँ रह जाएँगी।

इन बदलते मौसमों में मुस्तक़िल कुछ भी नहीं
सब्ज़ा-ज़ारों की जगह कुछ ज़र्दियां रह जाएँगी।

ये बरसते बादलों के क़ाफ़िले उठ जाएँगे
ख़्वाब आंखों में फ़क़त पुरवाइयां रह जाएँगी।

तैरने वाले उतर जाएँगे तूफ़ानों के बीच
और खड़ी साहिल पे सारी किश्तियाँ रह जाएँगी।

एक-इक मोती कहीं गहराई में खो जाएगा
साहिलों पर चँद ख़ाली सीपियां रह जाएँगी।

सतह पर आना तो है "बेताब" हम को एक दिन
याद में बाक़ी मगर गहराइयाँ रह जाएँगी।

○



मन आंगन का पिंजरा मैं।
उस में क़ैद परिंदा मैं।

कांच का खुला दरीचा मैं।
तेज़ हवा का झोंका मैं।

वन में रस्ता भूल गया
दूर देस का राजा मैं।

गर्म हवा से हार गया
घने पेड़ का साया मैं।

देखूं मेले मौजों के
नदी - किनारे बैठा मैं।

मछली जैसा ध्यान तिरा
सागर जैसा गहरा मैं।

मेरा साया और कोई
और किसी का साया मैं।

बूंद - बूंद खोया "बेताब"
रेगज़ार[1] पर बरसा मैं।

(1) रेगजार=रेगिस्तान, मरुस्थल



अजनबी बाज़ार में अक्सर गुज़र मेरा भी है।
इस हजूम-ए-बेकराँ[1] में एक सर मेरा भी है।

एक पौदा अपने हाथों से लगाया था यहाँ
इस घने जंगल में कोई इक शजर[2] मेरा भी है।

इत्तिफ़ाक़न[3] ही अनासिर[4] हैं मिरे तरतीब में
सिलसिला वर्ना तो सब ज़ेर-ओ-ज़बर[5] मेरा भी है।

ज़लज़ले जिस का मुक़द्दर हो गए उस शहर में
दरमियाँ ऊँचे मकानों के खंडर मेरा भी है।

गामज़न[6] "बेताब" आँखें मूंद कर मैं भी तो हूँ
जिस क़दर[7] सब का है ये अंधा सफ़र मेरा भी है।

○

(1) हजूम-ए-बेकरां=बहुत बड़ी भीड़ (2) शजर=वृक्ष
(3) इत्तिफ़ाक़न=यूँ ही (4) अनासिर=तत्व
(5) ज़ेर-ओ-ज़बर=उलट-पलट (6) गामज़न=चलने वाला
(7) जिस क़दर=जितना भी



मौसम बदल गया तो परिंदे हवा हुए।
फिर उस के बाद सारे समर[1] बेमज़ा हुए।

हुक्म-ए-सफ़र था और वज़ाहत[2] न थी कोई
बस बहर-ओ-बर[3] हमारे लिए रास्ता हुए।

जो ग़ैर-मुन्क़सिम[4] था वो तक़सीम हो गया
रस्तों के नाम ले के मुसाफ़िर जुदा हुए।

बेसूद[5] भी नहीं था समुंदर का ये सफ़र
कितने नए जज़ीरों से हम आशना[6] हुए।

तारीक जंगलों में तो महफ़ूज़ हम रहे
अपनी पनाहगाहों में बेआसरा हुए।

वो अपनी शक्ल देख न पाया तमाम उम्र
"बेताब" हम भी किस के लिए आइना हुए।

(1) समर=फल (2) वज़ाहत=तफ़सील
(3) बहर-ओ-बर=समुंदर और ज़मीनें
(4) ग़ैर-मुन्क़सिम=जो बट न सकता हो
(5) बेसूद=जिस का कोई फ़ायदा न हो
(6) आशना=वाक़िफ़, मित्र



कुछ उम्मीद बंधा दे चाहे धोखा दे।
जीने का मुझ को भी एक बहाना दे।

मैं तैरूँ तो पानी मुझ को गहरा दे।
थक जाऊँ तो कोई सब्ज़ जज़ीरा दे।

नए क़लम से नए हरूफ़ लिखूं मैं भी
तू भी मुझ को अपना काग़ज़ कोरा दे।

भूल-भुलैय्यों में क्यूं मुझ को रखता है
सफ़र दिया है तो इक सीधा रस्ता दे।

उम्र से लंबी हो गई ये तारीक सुरंग
दूसरी ओर का अब तो हमें उजाला दे।

ख़्वाहिश चांद-सितारों की इक गठरी है
मेरी चादर कायनात पर फैला दे।

बुरे जहां हैं वहीं रहें आबाद सदा
जो अच्छे हैं उन को देश निकाला दे।

ख़ुद-सर[1] मैं भी होता जाता हूँ "बेताब"
इक तलवार मिरे सर पर भी लटका दे।



(1) ख़ुद-सर=ज़िद्दी, हठीला



अंदर मैं हूँ बाहर मैं।
मंज़र मैं पस-मंज़र मैं।

नौ दरवाज़े खुले हुए
दसवें द्वार के अंदर मैं।

तू नदिया बेअंत अथाह
इक नन्हीं सी गागर मैं।

कँचन माटी एक हुए
जान गया जब मँत्र मैं।

सीढ़ी - सीढ़ी चढ़ता हूं
मन का दीप जला कर मैं।

इस मेले में भटक गया
तुझ से हाथ छुड़ा कर मैं।

वस्त्र पहने हैं "बेताब"
फिर भी हूँ निर-वस्त्र मैं।

○



कब था किसी मुक़ाम पे कब रहगुज़र में था।
मैं अपनी ही अना[1] के मुसलसल[2] सफ़र में था।

जड़ से उखड़ चुका था वो तूफ़ाँज़दा शजर[3]
लेकिन बला का ज़ायक़ा उस के समर में था।

डर था कि बह न जाएँ कहीं ज़ाबिते[4] तमाम
दरिया कोई चढ़ा हुआ अपनी नज़र में था।

हिजरत[5] के बाद ही मुझे मालूम हो सका
मेरे सिवा भी कोई मिरे सूने घर में था।

उन रास्तों पे और मुसाफ़िर भी थे मगर
गुमगश्ता[6] मैं तो अपने ही अंधे सफ़र में था।

घर से मुझे निकाल के ख़ुश हो गया था वो
मैं तो मगर बसा हुआ पूरे नगर में था।

"बेताब" चांद मेरे तआक़ुब[7] में था मगर
मैं ही फंसा हुआ कहीं दीवार-ओ-दर में था।

(1) अना=ख़ुदी, ख़ुद्दारी (2) मुसलसल=लगातार
(3) शजर=वृक्ष (4) ज़ाबिता=क़ायदा, क़ानून
(5) हिजरत=पलायन (6) गुमगश्ता = खोया हुआ
(7) तआक़ुब = पीछा करना



दुनिया-ए-रंग-ओ-बू से किनारा नहीं किया।
अच्छा किया जो हम ने दिखावा नहीं किया।

हम जिस्म को बचा न सके गर्द से मगर
ये तो किया कि रूह को मैला नहीं किया।

औरों पर अपनी ज़ात की तरजीह[1] तो बजा
हम ने कुछ अपने साथ भी अच्छा नहीं किया।

चुप-चाप बाहर आ गए रस्सा कशी से हम
ज़ाहिर किसी पर अपना इरादा नहीं किया।

बस डूबते उभरते रहे हैं तमाम उम्र
हम ने उबूर[2] कर्ब[3] का दरिया नहीं किया।

कुछ धूप उस को चीर के हम तक पहुँच गई
कुछ हम पर उस दरख़्त ने साया नहीं किया।

"बेताब" जानकार सभी करतबों के थे
कुछ बात थी जो हम ने तमाशा नहीं किया।

(1) तरजीह=बरतरी, प्राथमिकता
(2) उबूर करना=पार करना (3) कर्ब=दर्द



जब अपनी ज़ात पर ही भरोसा नहीं रहा।
हम को किसी से भी कोई शिकवा नहीं रहा।

कितने युगों की बर्फ़ है इस कोहसार[1] पर
बातिन[2] में इस के अब कोई लावा नहीं रहा।

क़बरें तमाम आने लगीं एक-सी नज़र
आंधी चली तो कोई भी कतबा[3] नहीं रहा।

उस को उड़ाऊँ और न वापस बुलाऊँ मैं
मेरी हवाओं में वो परिंदा नहीं रहा।

इस को जो देखता है कोई देखता रहे
जिस पर हमें था नाज़ वो चेहरा नहीं रहा।

पहुँचा दिया था उस ने हमें अंधे मोड़ तक
"बेताब" उस के बाद वो रस्ता नहीं रहा।

○

(1) कोहसार=पहाड़ (2) बातिन=अंदर
(3) कतबा=तख़्ती



शब का तलिस्म[1] रंग-ए-सहर[2] ले गई हवा।
आंखों में थे जो शम्स-ओ-क़मर[3] ले गई हवा।

उड़ते हुए परिंदों के पर ले गई हवा।
ये क्या हुआ कि अज़्म-ए-सफ़र[4] ले गई हवा।

गुंजान बस्तियां सभी वीरान हो गईं
एक-इक अज़ान[5] और गजर ले गई हवा।

पत्ता था ज़र्द कोई परिंदा नहीं था वो
जाना पड़ा उसे तो जिधर ले गई हवा।

एक-एक कर के अपनी जड़ों से जुदा हुए
कैसे बुलंद थे जो शजर[6] ले गई हवा।

बादाम-ओ-सेब हो गए वीरान बे-तरह
पत्ते तमाम सारे समर[7] ले गई हवा।

"बेताब" मुझ को अपनी फ़ना[8] का गिला नहीं
मुझ से मिरी अना[9] भी मगर ले गई हवा।

(1) तलिस्म=जादू (2) रंग-ए-सहर=सुबह का रंग
(3) शम्स-ओ-क़मर=सूरज और चांद
(4) अज़्म-ए-सफ़र=यात्रा का निश्चय
(5) अज़ान=बांग, नमाज़ का बुलावा (6) शजर=वृक्ष
(7) समर=फल (8) फ़ना=तबाही, मौत
(9) अना=ख़ुदी, ख़ुद्दारी



रेत है और बेकरानी[1] है।
और सहरा[2] की क्या कहानी है।

खोल कर देखो दर[3] मकानों के
लामकानी[4] ही लामकानी है।

किसी धरती के ये नहीं होते
पानियों की यही कहानी है।

रास्ता किस से मांगते हो मियां
भीड़ ने किस की बात मानी है।

अपने क़दमों के नक़्श[5] ग़ायब हैं
बेनिशानी सी बेनिशानी है।

बर्फ़ है ये जो रह गई जम के
और जो बह गया वो पानी है।

हमीं कुछ रुक गए-से हैं "बेताब"
वर्ना चारों तरफ़ रवानी है।

○

(1) बेकरानी=बहुतात (2) सहरा=मरुस्थल
(3) दर=दरवाज़ा (4) लामकानी=किसी भौतिक पदार्थ का न होना (5) नक़्श=निशान



समुंदर तो फ़क़त[1] इक नक्श-ए-पा[2] है।
कहीं इक नाम पानी पर लिखा है।

ज़मीं का लम्स[3] मिल जाए तो उतरूँ
अभी तो पांव के नीचे ख़ला है।

हैं सब्ज़-ओ-ज़र्द सारे रंग उस के
मगर वो सब रुतों से मावरा[4] है।

पहाड़ों पर अभी है धूप रौशन
गली-कूचों में दिन कब का ढला है।

कभी सैलाब के मौसम में आना
अभी ख़ामोश दरिया बह रहा है।

मुरम्मत अब कहाँ "बेताब" मुमकिन
मकान अपना खंडर-सा हो गया है।

(1) फ़क़त=केवल (2) नक़्श-ए-पा=क़दमों के निशाँ
(3) लम्स=स्पर्श (4) मावरा=परे



ध्यान उस का है मेरा चिंतन है।
आग उस की है मेरा ईंधन है।

तेज़ लहरें किनारे तोड़ती हैं
और पुल इक ख़मोश बंधन है।

कोई चौदह बरस की बात नहीं
मेरा बनवास एक जीवन है।

अब सफ़र क्या है क्या शिकस्त-ए-सफ़र[1]
पा-ए-रफ़्तन[2] न जा-ए-माँदन[3] है।

पत्थरों को न इस में रक्खा कर
कांच का ये जो तेरा बर्तन है।

बुझ चुकी है जो राख है "बेताब"
और जो जल रहा है ईंधन है।

(1) शिकस्त-ए-सफ़र=यात्रा की असफलता
(2) पा-ए-रफ़्तन=चलने को पांव
(3) जा-ए-मांदन=थक के रुकने की जगह



शजर[1] हजर[2] में पा रहा था ज़िंदगी।
मैं क़त्ल हो रहा था जब गली-गली।

कहां तलक रुकेगी बाढ़ इस तरह
कहीं से टूट जाए गा ये बांध भी।

इक और दिन ज़वाल[3] के क़रीब है
उतर चली है शाम फिर गली-गली।

कहीं से भी न बच के हम निकल सके
तमाम रास्तों पर अंधी भीड़ थी।

हमारे दरमियान फ़ासले न थे
हमारे दरमियान दौड़-धूप थी।

सफ़र तमाम तो न हो सका मगर
इक और नस्ल रास्ते में रह गई।

(1) शजर=वृक्ष (2) हजर=पत्थर
(3) ज़वाल=उतार



जब से तअल्लुक़ात[1] के ख़ेमें उखड़ गए ।
अपने घरों में रहते हुए लोग उजड़ गए ।

वापस भी आसमान से आना पड़ा हमें
ये भी हुआ कि पाँव ज़मीं से उखड़ गए ।

खोदी थीं हम ने अपनी रिवायात[2] के लिए
ये क्या हुआ कि हम इन्हीं क़बरों में गड़ गए ।

बस्ती में साँप आने लगे हर तरफ़ नज़र
और फिर बसे-बसाए हुए घर उजड़ गए।

कल तक जो हिजरतों[3] में भी ज़ंजीर-ए-पा[4] रही
आज उस ज़मीं से पांव हमारे उखड़ गए।

"बेताब" अपने अस्ल में ये सारे एक थे
इक-दूसरे से रास्ते कितने बिछड़ गए।

(1) तअल्लुक़ात = संबंध (2) रिवायात = परम्पराएँ
(3) हिजरत = पलायन (4) ज़ंजीर-ए-पा = पांव की ज़ंजीर



इक रोज़ हम को हम से चुरा ले गई हवा।
फिर राह-ए-गुमरही पे बढ़ा ले गई हवा।

फिर उस के बाद पांव हमारे न जम सके
टूटे ज़मीं से हम तो उड़ा ले गई हवा।

ऐसी चली कि दश्त-ओ-दमन[1] गुंग हो गए
सब की ज़ुबान सब की सदा ले गई हवा।

कुछ यूँ हुआ कि ख़्वाब सभी संग[2] हो गए
गर्दिश तमाम सारी अदा ले गई हवा।

ताबीर कौन कौन सी तकमील[3] उस के बाद
आंखों में थे जो ख़्वाब चुरा ले गई हवा।

"बेताब" ऊँट कौन से अब ख़ेमें कौन से
जो भी नक़ूश-ए-पा[4] थे उड़ा ले गई हवा।

○

(1) दश्त-ओ-दमन = जंगल और बस्ती
(2) संग = पत्थर (3) तकमील = पूरा करना
(4) नक़ूश-ए-पा = क़दमों के निशान



पढ़ते रहे हमेशा पुरानी किताब हम।
करते रहे तलाश नया कोई बाब[1] हम।

सैलाब ने बहाया हमें ख़ार-ओ-ख़स[2] के साथ
मशहूर इक जहान में थे आशनाब[3] हम।

रिश्तों की तोड़-फोड़ तो होती नहीं क़बूल
और उस पे चाहते हैं कोई इन्क़िलाब हम।

अंदर सजाए रखते हैं गमलों में कैक्टस
बाहर तलाश करते हैं ताज़ा गुलाब हम।

धूप और छाँव शाना-ब-शाना[4] थे उम्र भर
अच्छे बुरे दिनों का रखें क्या हिसाब हम।

"बेताब" सब वो मौज-ओ-तलातुम[5] में बह गए
लाए थे साथ कितने जज़ीरों के ख़्वाब हम।

(1) बाब=अध्याय (2) ख़ार-ओ-ख़स=कूड़ा-करकट
(3) आशनाब=तैराक (4) शाना-ब-शाना=साथ-साथ
(5) मौज-ओ-तलातुम=लहरें और तूफ़ान



कुछ-न-कुछ सूरत-ए-हालात बदल जाएगी।
धूप निकलेगी तो ये बर्फ़ पिघल जाएगी।

यूँ ही कल देखना दीवार रहेगी दुनियाँ
शीशा रह जाएगा तस्वीर बदल जाएगी।

एक तितली मिरी दीवार पे चस्पाँ[1] हो जाए
एक ख़्वाहिश है जो तस्वीर में ढल जाएगी।

डूबते देखा है सूरज को भी हम ने अक्सर
देखते-देखते ये रात भी ढल जाएगी।

हादिसा ये है कि बदले हुए ख़ुद आज वो हैं
कल जो कहते थे कि तक़दीर बदल जाएगी।

यूँ ही साहिल पे खड़े रहने से हासिल "बेताब"
देखना आख़री किश्ती भी निकल जाएगी।



(1) चस्पां = चिपका हुआ

○

किस तरफ़ से आया हूँ रुख़ है अब किधर मेरा।
रास्तों के जंगल में खो गया सफ़र मेरा।

मेरी सम्त[1] आए भी किस लिए कोई तायर[2]
फूल मेरे बेख़ुश्बू तुर्श[3] है समर[4] मेरा।

दोनों ज़ाहिरन[5] भरपूर दोनों बातिनन[6] ख़ाली
देखता हूँ मैं इसको और मुझ को घर मेरा।

पानी रास्ता देगा एक दिन सफ़ीने को
बेनिशां जज़ीरे तू इंतज़ार कर मेरा।

कांगड़ी[7] बग़ल में थी ख़्वाब शोला-शोला थे
और राख के अँदर बुझ गया शरर[8] मेरा।

(1) सम्त=दिशा (2) तायर=पक्षी
(3) तुर्श=खट्टा (4) ज़ाहिरन=बाहर से (देखने में)
(5) बातिनन=अंदर से (6) समर=फल
(7) कांगड़ी= (8) शरर=चिंगारी

○

नाउम्मीदी पे भी वीराना सजा रक्खा है।
हम ने आसार का दरवाज़ा खुला रक्खा है।

मील-पत्थर की तरह जिस ने बनाए हैं सराब[1]
उसी ने पेड़ भी सहरा[2] में उगा रक्खा है।

ईंट-पत्थर के शजर[3] दूर तलक फैले हैं
शहर में किस ने ये जंगल को बसा रक्खा है।

साथ माँगा था कभी ताज़ा हवा का हम ने
गर्द के साथ हमें उस ने उड़ा रक्खा है।

बेसबाती[4] ने तबीअत की हमारी "बेताब"
अपना घर है जिसे परदेस बना रक्खा है।

(1) सराब=मृग-तृष्णा (2) सहरा=मरुस्थल
(3) शजर=वृक्ष (4) बेसबाती=नापायदारी



मुझ को ऐसे लगता है घर से जब निकलता हूँ।
हर कोई मुकम्मल है एक मैं अधूरा हूँ।

अजनबी हूँ अपनों में भीड़ में अकेला हूँ।
मैं कि इक दरीचा हूँ और बंद रहता हूँ।

कोई बूंद पानी की रेत में नहीं ठहरी
मैं भी किन ज़मीनों पर अबर[1] बन के बरसा हूँ।

आएगी कोई आंधी बेनिशान कर दे गी
रेगज़ार पर लिखा मैं कोई नविश्ता[2] हूँ।

मुंतज़िर[3] अज़ल से हूँ मैं किसी कोलम्बस का
बेकरां[4] समुंदर में बेनिशां जज़ीरा हूँ।

पर कहीं मिरा "बेताब" है कहीं मिरी परवाज़[5]
सरहदों से नावाक़िफ़ बेवतन परिंदा हूँ।

○

(1) अबर=बादल (2) नविश्ता=लिखा हुआ
(3) मुंतज़िर=प्रतीक्षा में (4) बेकरां=विशाल
(5) परवाज=उड़ान



मानूस[1] पांव से हुआ जब रास्ता मिरा।
गर्दिश ने मुझ से छीन लिया हाफ़िज़ा[2] मिरा।

छूटा सफ़ीना हो चुकी मौजों से दोस्ती
दरिया दिखा रहा है मुझे रास्ता मिरा।

झुठला रहा है कौन मुझे मेरे सामने
ये क्या बिखा रहा है मुझे आइना मिरा।

शिकवा करूँ तो किस से करूँ अपने हाल का
मेरा सफ़र है पांव मिरा आबला[3] मिरा।

हैरान ख़ुद भी हूँ कि ये मेरा कमाल है
किन आँधियों में जलता रहा है दिया मिरा।

"बेताब" अपने साथ उड़ा ले गई मुझे
ख़ुश्बू ने मुझ से छीन लिया रास्ता मिरा।

○

(1) मानूस==वाक़िफ़ (2) हाफ़िज़ा=याद्दाश्त
(3) आबला=छाला



रास्तों - रास्तों भटकता हूँ।
जाने किस की तलाश करता हूँ।

हार जाता हूँ शाम होने तक
अपने साए से रोज़ लड़ता हूँ।

ज़िंदगी देख मैं तिरी ख़ातिर
रोज़ किस-किस तरह से मरता हूँ।

मेरी हिजरत[1] ही मेरी फ़ितरत[2] है
रोज़ बसता हूँ रोज़ उजड़ता हूँ।

सुबह - दम सब उखड़ने लगते हैं
ख़्वाब जो रात-रात बुनता हूँ।

वाहमे[3] पालता हूँ मैं "बेताब"
और परछाइयों से लड़ता हूँ।

(1) हिजरत=पलायन (2) फ़ितरत=ज़मीर
(3) वाहमा=कल्पना-शक्ति



दफ़्न जो हो गया वो ज़िन्दा क्या।
क़बर में सोचता है मुर्दा क्या।

रफ़्त[1] की बेनिशानियों के सिवा
अब है इन खंडरों में रक्खा क्या।

रास्तों में जो खो गए हम लोग
सम्त[2] क्या अब सफ़र का क़िस्सा क्या।

बस गए जो किसी जज़ीरे में
साहिलों की उन्हें तमन्ना क्या।

उम्र आवार्गी के नाम जो की
कोह क्या दश्त[3] क्या है दरिया क्या।

शहर तो ख़ुद उजड़ता जाता है
और अब चाहता है सहरा[4] क्या।

हम कुछ अपनी तरह के बंदे हैं
इम्तिहाँ क्या हमें नतीजा क्या।

अपनी धरती भी छोड़ दी "बेताब"
आसमां से भी हम ने पाया क्या।

O

(1) रफ़्त=बीता हुआ समय (2) सम्त=दिशा
(3) दश्त=जंगल, मरुस्थल (4) सहरा=मरुस्थल



आबाद अगर पूछो तो गुंजान बहुत है।
ये दश्त-नुमा[1] शहर जो वीरान बहुत है।

मैं जिस्म से शामिल हूँ मगर क़ाफ़िले वालो !
जो रूह की पूछो तो ये हलकान[2] बहुत है।

मुमकिन हो तो रस्ते में निशां छोड़ते जाना
इस भीड़ में खो जाने का इमकान[3] बहुत है।

मंज़िल तो कहां कोई निशां तक नहीं मिलता
सुनते थे कि ये रास्ता आसान बहुत है।

इक तुझ से बिछड़ना था कि बेनाम-ओ-नसब हैं
हम सोचते थे शहर में पहचान बहुत है।

मेले में किसी चेहरे पे रौनक नहीं अब के
जो भी है सो हैरान-ओ-परेशान बहुत है।

"बेताब" हमें नाज़ कि तैराक हैं हम भी
अच्छा है कि दरिया में भी तूफ़ान बहुत है।



(1) दश्त-नुमा=जंगल जैसा (2) हलकान=थका मांदा
(3) इमकान=हो सकना, आसार



मोती क्या क्या बिखरे हैं।
ध्यान के सागर गहरे हैं।

सूरज सर पर आया है
और अंधेरे फैले हैं।

नन्हें - नन्हें झरनों के
पानी कितने गहरे हैं।

उस का कोई रंग नहीं
सारे रंग उसी के हैं।

मिट्टी डालो रिश्तों पर
मिट्टी के सब रिश्ते हैं।

सपने बेचने वालों के
अपने भी कुछ सपने हैं।

वो सच्चा है मगर उस के
सभी हवाले[1] झूठे हैं।

दुनियां छोड़ के भी "बेताब"
हम दुनियां में रहते हैं।

○

(1) हवाला=पता, निशान

⊙

आसेब-ए-आगही[1] का ज़माना गुज़र गया।
यादश-बख़ैर[2] सर तो गया दर्द-ए-सर गया।

फ़िक्र-ए-मुआश[3] तेरे हवाले[4] की ख़ैर हो
इर्फ़ान-ए-ज़ात[5] का जो ख़ला[6] था वो भर गया।

मौजों के साथ दूर बहुत बह गए थे हम
फिर जाने कब चढ़ा हुआ दरिया उतर गया।

थी ताज़गी भी इस में रवानी थी जब तलक
पानी अब इक मुक़ाम पर आकर ठहर गया।

इक दिन वो ले गया मेरे ख़ेमे[7] की रौनकें
तन्हाइयाँ तमाम मिरे नाम कर गया।

कुछ दायरे बनाए थे लहरों ने और फिर
पत्थर जो था वो झील के अंदर उतर गया।

दीवार-ओ-दर खड़े रहे बाहर उसी तरह
और ज़लज़ला मकान के अंदर उतर गया।

"बेताब" जिस में खो गए थे थोड़ी देर हम
आंखों के सामने वो धुआं भी बिखर गया।

○

(1) आसेब-ए-आगही=ज्ञान का भूत (प्रेत)
(2) यादश-बख़ैर=उस की ख़ैर हो
(3) फ़िक्र-ए-मुआश=रोटी की फ़िक्र
(4) हवाला=पता, निशान
(5) इर्फ़ान-ए-ज़ात=अपनी पहचान
(6) ख़ला=शून्य (7) ख़ेमा=तंबू, कैम्प



अपने ख़याल में वो बड़ा काम कर गया।
कुछ अपने हादिसात मिरे नाम कर गया।

इक बार अपने नाम से मुझ को पुकार कर
इक उम्र के लिए मुझे बेनाम कर गया।

बदला हुआ हवा का वो रुख़ था जो आख़रश[1]
नाम-ओ-नमूद[2] वालों को गुमनाम कर गया।

रौशन शब-ए-सियाह[3] में जुगनू हुआ तो है
नन्हीं-सी जान और बड़ा काम कर गया।

शायद ख़ुद अपने ख़ून का ही ज़ाइका था वो
दाने को जो हमारे लिए दाम कर गया।

"बेताब" अजनबी था सभी के लिए मगर
बरपा[4] तमाम शहर में कुहराम कर गया।

O

(1) आख़रश=अंत में (2) नाम-ओ-नमूद=बड़ा नाम
(3) शब-ए-सियाह=काली रात
(4) बरपा=क़ायम, बरक़रार



भटका रहा है कब से हमारा सफ़र हमें।
लाया न संग-ए-मील कोई राह पर हमें।

कुछ हम हैं गुमशुदा तो है कुछ वो भी गुमशुदा
हम रहगुज़र को ढूंढते हैं रहगुज़र हमें।

मछली ने हम को सारे ख़ज़ाने दिखा दिए
आता न था उभरना मगर डूब कर हमें।

हम को लिए भटकती रही रात दश्त-दश्त[1]
जब शहर-शहर ढूंढ रही थी सहर[2] हमें।

घर से हमारे ले गया महमान बूद-ओ-बाश[3]
और दे गया इक उम्र का अंधा सफ़र हमें।

दुनियां से छुप के भी न मिली लज़्ज़त-ए-गुनाह[4]
शर्मिंदा कर रही थी ख़ुद अपनी नज़र हमें।

उस को उखाड़ ही दिया आंधी ने आख़रश[5]
बेसाया कर गया वो तनावर[6] शजर[7] हमें।

"बेताब" सच तो ये है क़दम ही उधर उठे
ले जाना चाहती थी हवा जब जिधर हमें।

(1) दश्त=जंगल, मरुस्थल (2) सहर=सुबह
(3) बूद-ओ-बाश=क़याम, रिहाइश
(4) लज्ज़त-ए-गुनाह=गुनाह का स्वाद
(5) आख़रश=अंत में
(6) तनावर=मोटा ताज़ा, मज़बूत (7) शजर=वृक्ष



गोया[1] अपना फ़न ही आज़र[2] भूल गए।
पत्थर कुछ ऐसे थे पैंकर[3] भूल गए।

दुनिया में हम थे तो अपनी याद न थी
अन्दर सफ़र किया तो बाहर भूल गए।

कुछ मंज़र भी सामने और तरह के थे
कुछ हम भी अपना पस-मंज़र[4] भूल गए।

खोए रहे हम बाज़ारों की रौनक़ में
अपना कूचा और अपना घर भूल गए।

किधर ज़ियादा और किधर कम थे किस वक़्त
ये हम दो हिस्सों में बंट कर भूल गए।

गिन-गिन कर बदले लेने की क़समें थीं
ज़ख़्म भरे तो सारे पत्थर भूल गए।

सिपह-गरी[5] का एक जुनून सा था हम को
जंग में कौन था अपना लश्कर[6] भूल गए।

किस की है पहचान ख़राबे[7] में "बेताब"
हम तो अपना नाम भी अक्सर भूल गए।

○

(1) गोया=जैसे (2) आज़र=संग तराश, मूर्तिकार
(3) पैकर=आकृति (4) पस-मंज़र=पृष्ठ भूमि
(5) सिपह-गरी=तलवार बाज़ी (6) लश्कर=फ़ौज
(7) ख़राबा=वीरान जगह



कोई लुटेरा हूँ या कोई दरिंदा[1] हूँ।
अपनी ज़ात से आख़िर क्यूँ शर्मिंदा हूँ।

शाख़ मुंडेर नशेमन कहीं तो उतरूँगा
अभी हवा के दोश[2] पर एक परिंदा हूँ।

हम-असरों[3] के क़िस्से सुनता हूँ अक्सर
आने वाली नस्लों से शर्मिंदा हूँ।

अपनी क़बर में सोचता रहता हूँ कुछ कुछ
अल्लाह जाने मुर्दा हूँ या ज़िंदा हूँ।

और झुकूँ अब इतना भी मजबूर नहीं
अंदर - अंदर पहले ही शर्मिंदा हूँ।

हाल[4] में खोजता क्या है तू "बेताब" मुझे
मुस्तक़बिल[5] का ख़्वाब हूँ मैं आईंदा[6] हूँ।

○

(1) दरिंदा=ख़ूनख़ार जानवर (2) दोश=कंधा
(3) हम असर=समकालीन (4) हाल=वर्तमान
(5) मुस्तक़बिल=भविष्य (6) आईंदा=(आगे) आने वाला



है सम्त-ए-सफ़र[1] और न मंज़िल का पता याद।
गर्दिश ही कुछ ऐसी रही कुछ भी न रहा याद।

अब सीख लिए हम ने सभी तौर तरीक़े
अब सादगी अपनी है न औरों की रिया[2] याद।

शौहरत है कि भरपूर तशख़्ख़ुस[3] है हमारा
रह-रह के मगर आता है अंदर का ख़ला[4] याद।

अपनी क़बर में सोचता रहता हूँ कुछ कुछ
अल्लाह जाने मुर्दा हूँ या ज़िंदा हूँ।

और झुकूँ अब इतना भी मजबूर नहीं
अंदर-अंदर पहले ही शर्मिंदा हूँ।

हाल[4] में खोजता क्या है तू "अेताब" मुझे
मुस्तक़बिल[5] का ख़्वाब हूँ मैं आईंदा[6] हूँ।

(1) दरिंदा=ख़ूनख़ार जानवर (2) दोश=कंधा
(3) हम असर=समकालीन (4) हाल=वर्तमान
(5) मुस्तक़बिल=भविष्य (6) आईंदा=(आगे) आने वाला



है सम्त-ए-सफ़र[1] और न मंज़िल का पता याद।
गर्दिश ही कुछ ऐसी रही कुछ भी न रहा याद।

अब सीख लिए हम ने सभी तौर तरीक़े
अब सादगी अपनी है न औरों की रिया[2] याद।

शौहरत है कि भरपूर तशख़्ख़ुस[3] है हमारा
रह-रह के मगर आता है अंदर का ख़ला[4] याद।

फैली हुई ये आग तो बुझ जाएगी बेशक
तादेर[5] मगर आए गी ये गर्म हवा याद।

था उस की नफ़ी[6] में भी कोई रंग सना[7] का
मुनकिर[8] भी रहे हम तो रहा हम को ख़ुदा याद।

आए गा किसी रोज़ मिरे सामने "बेताब"
रहता है हमेशा कोई सैलाब-ए-बला[9] याद।

(1) सम्त-ए-सफ़र=यात्रा की दिशा
(2) रिया=धोखा, फ़रेब (3) तशख़्ख़ुस=व्यक्तित्व
(4) ख़ला=शून्य (5) तादेर=देर तक
(6) नफ़ी=किसी चीज़ के वजूद से इन्कार
(7) सना=स्तुति (8) मुनकिर=नास्तिक
(9) सैलाब-ए-बला=दु:खों, मुसीबतों का तूफ़ान



कोई चौदह बरस की बात नहीं
मेरा बनवास एक जीवन है ।

'बेताब'